स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द ने सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया. इस दृष्टि से भारत के प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं में उनकी गणना आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकती है, किन्तु राष्ट्रीयता और राजनीतिक जीवन सम्बन्धी उनके विचारों ने भारतीय राष्ट्रवाद पर गहरी छाप छोड़ी अतः भारत के प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं में उन्हें स्थान न देना पूर्णतः अनुचित और गलत होता.

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का बचपन का नाम नरेन्द्र दत्त था. उनका जन्म जनवरी, 1863 ई. को हुआ. उन्होंने अपना शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राप्त की. आरम्भ से ही नरेन्द्र दत्त में आध्यात्मिक जिज्ञासा थी. इसी जिज्ञासा से वह रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आए तथा उनके शिष्य बन गए. उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और धार्मिक ग्रन्थों का विशद अध्ययन किया. सितम्बर 1893 में उन्होंने शिकागो में आयोजित 'धर्मों की संसद में भाग लिया तथा हिन्दू धर्म और भारत की संस्कृति को इतने प्रभावशाली ढंग से श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया कि रातों-रात उनकी ख्याति सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत में हो गई. अप्रैल 1897 तक वह पश्चिम के देशों का भ्रमण करते हुए हिन्दू धर्म, दर्शन व संस्कृति का प्रचार करते रहे. जुलाई 1899 में उन्होंने दूसरी बार विश्व की धार्मिक यात्रा की. दिसम्बर 1900 तक चलने वाली इस यात्रा में उन्होंने 1900 में पेरिस में आयोजित धर्म संसद में भागीदारी की. हिन्दू धर्म के प्रचार प्रसार व रक्षा के लिए स्वामी विवेकानन्द के प्रयासों का मूल्यांकन रामधारी सिंह दिनकर ने निम्न शब्दों में किया **"हिन्दुत्व को जीतने के लिए अंग्रेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के पेट से जो तूफान उठा था, वह विवेकानन्द के हिमालय जैसे विशाल वृक्ष से टकरा कर लौट गया."** शिकागो सम्मेलन में उनके भाषण पर न्यूयार्क हेराल्ड की प्रतिक्रिया थी. **"उनको सुनने के पश्चात् हमें यह पता लगा कि विद्वान देश में**

आरम्भ से ही स्वामी विवेकानन्द ने अपने प्रयासों को संगठित रूप प्रदान किया. 1887 में उन्होंने वारानगर में रामकृष्ण मठ की स्थापना की थी. 1899 में इस मठ को वेलूर में स्थापित कर दिया गया. अमरीका में उनके द्वारा वेदान्त सोसायटी की स्थापना की गई तथा 1897 में भारत लौट कर आने पर 5 मई को रामकृष्ण मिशन को स्थापित किया गया. 4 जुलाई, 1902 को विवेकानन्द का देहान्त हो गया.

स्वामी विवेकानन्द के विचारों का आधार विन्दु धर्म था. धर्म को वह मानव जीवन का अभिन्न अंग मानते थे. उनके अनुसार **"मनुष्य के लिए धर्म को अपने से पृथक करना उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक कि वह अपने मस्तिष्क और शरीर को ही अपने से अलग न कर दे."** किन्तु विवेकानन्द ने कभी भी धर्म को परम्परागत अर्थ में नहीं लिया. धर्म क्या है? इस पर उनके विचार थे **"धर्म न पुस्तकों में है, न बौद्धिक विकास में और न तर्क में. तर्क, विचार, सिद्धान्त, ग्रन्थ, धार्मिक कर्मकाण्ड यह धर्म के सहायक हैं. धर्म स्वयं आत्मज्ञान में है."**

विवेकानन्द के विचारों का दार्शनिक आधार वेदान्त था. वह ब्रह्म, आत्मा, माया के सिद्धान्त में विश्वास करते थे. उनके अनुसार **"अद्वैत दर्शन में सम्पूर्ण विश्व एक ही सत्ता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं. वही सत्ता जब विश्व के मूल में प्रकट होती है तो उसी को ईश्वर कहते हैं. वही सत्ता जब इस लघु विश्व अर्थात् शरीर के मूल में प्रकट होती है तो आत्मा कहलाती है."** आत्मा में आस्था के कारण विवेकानन्द ने प्रत्येक मानव में ईश्वर को देखा और इस प्रकार उनके लिए मानव की सेवा ईश्वर की सेवा का पर्याय बन गई. वह एक उदात्त मानवतावाद के अनुयायी हो गए. उन्होंने आह्वान किया **"निर्धन, नासमझ, अशिक्षित और असहाय को अपना ईश्वर बनाओ, इनकी सेवा करना ही महान धर्म है."**

स्वामी विवेकानन्द ने अपने राष्ट्रवाद में भारतीयत्व पर और भारतवासियों की एकता पर बल दिया. उन्होंने देशवासियों का आह्वान किया **इस बात पर गर्व करो कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ घोषणा करो, "मैं भारतीय हूँ और प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है."** उन्होंने प्रेरित किया **"मेरे बन्धु बोलो भारत की भूमि मेरा परम स्वर्ग है, भारत का कल्याण मेरा कल्याण है."**

भारत के इस कल्याण के लिए आवश्यक था कि भारतीय निर्भीक और शक्तिशाली बने. विवेकानन्द का सूत्रवाक्य था **'शक्ति ही धर्म है.'** इस अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था **"मेरे धर्म का सार शक्ति है. जो धर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है, चाहे वह उपनिषदों का धर्म हो और चाहे गीता अथवा भागवत का. शक्ति**

इस शक्ति का अर्जन व्यक्ति व राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक था. स्वतंत्रता के लक्ष्य पर विवेकानन्द ने विशेष जोर दिया. उन्होंने स्वतंत्रता को आध्यात्मिक प्रगति की एक-मात्र शर्त माना. लंदन में एक व्याख्यान में उन्होंने कहा **"यह विश्व क्या है? स्वतंत्रता में इसका उदय होता है और स्वतंत्रता पर ही वह अवलम्बित है."** अतः उनके अनुसार मनुष्य को स्वयं शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए और अन्यों की सहायता इस लक्ष्य की प्राप्ति में करना चाहिए. उनका आह्वान था **"जो सामाजिक नियम इस स्वतंत्रता के विकास में बाधा डालते हैं वे हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्र नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए."** स्वतन्त्रता की इस उत्कट इच्छा का स्वाभाविक परिणाम था दासता या परतंत्रता का विरोध. विवेकानन्द ने दासता को एक अभिशाप और बंधन के रूप में लिया. उन्होंने जनता को आगाह किया कि गुलाम गुलाम ही होता है भले ही उसके साथ कितना ही अच्छा व्यवहार क्यों न किया जाए. उनका कहना था कि सोने की जंजीरें भी उतनी ही मजबूती से बाँधती हैं. अतः आवश्यकता अपने को बंधन मुक्त करने की है. विवेकानन्द का यह संदेश जो आत्मा की मुक्ति के संदर्भ में दिया गया था राजनीतिक गुलामी की बेड़ियों को काटने के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन गया.

विवेकानन्द ने स्वतंत्रता पर इसलिए बल दिया, क्योंकि वह मानते थे कि एक स्वतंत्र राष्ट्र ही विश्व में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है. विवेकानन्द के अनुसार इस विश्व में प्रत्येक राष्ट्र का एक निर्धारित मिशन था. विश्व इतिहास में उसकी यह भूमिका इससे तय होती थी कि उस राष्ट्र के जीवन का प्रधान तत्व क्या है? विवेकानन्द के अनुसार **"जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वर होता है वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब तत्व उसी में केन्द्रित होते हैं."** अपने देश के सम्बन्ध में उनकी मान्यता थी **"भारत का तत्व धर्म है. समाज सुधार व अन्य सब कुछ गौण है."** इस प्रकार विवेकानन्द की राष्ट्र की अवधारणा एक धर्म-राष्ट्र की अवधारणा थी, धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र की नहीं. उन्होंने भले ही धर्म को मानव धर्म के रूप में लिया हो तथा वेदान्त को विश्व और विश्व धर्म की बुद्धि संगत व्याख्या माना हो, परवर्ती राजनीतिज्ञों ने विवेकानन्द की इस शिक्षा का उपयोग भारत-राष्ट्र के स्थान पर हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा को पुष्ट करने के लिए किया.

स्वामी विवेकानन्द अपने समय के भारतीय समाज की दशा से व्यथित थे. देश की गरीबी उनको वेदना पहुँचाती थी. गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन्होंने दरिद्र नारायण की

अवधारणा को लोकप्रिय बनाया. इस अवधारणा के अनुसार **"विश्व में एक ही ईश्वर है.....वह ईश्वर सब जातियों के दीन तथा दरिद्र लोग हैं."** उन्होंने स्मरण कराया कि राष्ट्र झोपड़ियों में रहता है तथा **"जब तक उनका उद्धार नहीं होता तब तक महान भारतमाता का कभी उद्धार नहीं हो सकता."** सामाजिक जीवन के क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द भारत के वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक ढाँचे के विरोधी नहीं थे, किन्तु जाति प्रथा की बुराइयों का उन्होंने कभी भी समर्थन नहीं किया. वह चाहते थे कि जाति प्रथा को उदात्त बनाया जाए. उन्होंने ब्राह्मणों के अधिकारवाद तथा उस पर आधारित जातीय उत्पीड़न और सामाजिक भेदभाव की कटु आलोचना की.

विवेकानन्द के योगदान का मूल्यांकन करते हुए सुभाष ने कहा था **"जहाँ तक बंगाल का सम्बन्ध है, हम विवेकानन्द को आधुनिक राष्ट्रीय**